वहाबी मत का सत्य

लेखक :– आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी

किस्त : 2 सम्पादन : नूरे हिदायत फाउन्डेशन

फिर समाचार पत्रों ने बहुत से निबंधों के अलावा इलतवाए हज के मसले पर शिया और सुन्नी दोनों के विचारों से बहस करते हुए––––––––––––––––– एक विस्तृत निबंध लिखा जिसे "खुद्दामुल हरमैन" संस्था ने कुछ दूसरे लोगों के निबंधों के साथ प्रकाशित कराया। जनाब नजमुल मिल्लत आलल्लाहु मुक़ामह के पास इराक़ शाम आदि के उलमा के जो पत्र इस विषय पर आए थे उनके आदेश से उनका उर्दू अनुवाद और अपनी तरफ़ से मुस्लिम दुनिया के लिए एक अरबी अपील अनुवाद के साथ मिलाकर "फ़रियादे मुसलमानाने आलम" के नाम से एक कालम में अरबी और दूसरे कालम में उर्दू इस प्रकार एक किताब तैयार की जिसे अन्जुमने 'मुईयदुल उलूम' मदरसतुल वाअईज़ीन लखनऊ ने प्रकाशित किया।

अब मैंने इस विषय पर अरबी में एक पूर्ण किताब लिखने का विचार किया जिसमें वहाबियत का इतिहास और नजदियों के सब विचारों पर पर्याप्त समीक्षा की जाए। इसलिए मुझे बहुत से पुस्तकालयों की सैर करनी पड़ी और इस विषय पर बहुत कुछ मिल गया मगर अभी इसको ठीक से लिखने का कार्य शुरू भी नहीं हुआ था कि शाबान 1345 हि0 में पढ़ाई पूरी करने के लिए मुझे इराक़ जाना पड़ा। सौभाग्य से उसी दिन (सय्यदुल फुक़हा) जनाब मौलाना मुफ़्ती सय्यद अहमद अली साहब अपने घर वालों के साथ ज़ियारत के लिए रवाना हुए और रेल और जहाज़ दोनों में उनका साथ रहा करबला–ए–मोअल्ला में इमाम हुसैन के हरम के पास एक मकान ताजमहल मरहूमा का था जिसमें अधिकतर भारतीय ज़ायरीन ठहरते थे यहीं पर रूका।

आमतौर पर जो आदमी ज़ियारत के लिए जाता है वह नजफ़े अशरफ़, काज़मैन, सामराह सब जगह की ज़ियारत को जाएगा मगर जाते समय जब उससे पूछा जाय कहाँ जा रहे हो तो कहेगा कि 'करबलाऐ मुअल्ला' और जो पढ़ने के लिए जाए वह भी इन सब जगहों की ज़ियारत करेगा मगर उससे जब पूछा जाए कहाँ जा रहे हो? तो कहेगा 'नजफ़े अशरफ़'। इसलिए मुफ़्ती साहब ज़ियारत के लिए गए थे तो करबला जाकर उनका अहसास ये था कि अपनी मंजिल (गंतव्य स्थान) पर आ गए। इसलिए वह कुछ समय के लिए वहाँ रूक गए ओर मैं दो चार दिन वहाँ रह कर नजफ़ चला गया। और कुछ दिन ख़ादिम के यहाँ रूक कर मदरसा–ए–हिन्दी में जो लाहौर के क़ज़लबाश घराने का बनवाया हुआ था इसलिए "मदरसा–ए–नवाब" कहलाता था, में रहने लगा। इराक़ व ईरान में मदरसे का अर्थ छात्रावास होता है वरना पढ़ाई तो मस्जिदों या उलमा के मकानों पर होती है।

अब पहुँच तो गए मगर पढ़ाई का काम अभी आरम्भ नहीं हुआ था क्योंकि रमज़ान का महीना आने वाला था जिसकी वजह से पढ़ाई बन्द हो चुकी थी और नौ शव्वाल तक छुट्टी थी इसलिए हमने इस समय का सही उपयोग करने के लिए यह कार्य हाथ में लिया कि वहाबी मत के सत्य के बारे में जो कुछ मटीरियल भारत में इकठ्ठा किया था उसे किताब की तरह अरबी में लिखना शुरू कर दिया इस तरह कि प्रतिदिन दस पन्ने लिखे जाएं इस प्रकार दस दिन में सौ पेज की किताब तैयार हो गई और दस दिन उसे साफ़ करने में लगे।

नजफ़े अशरफ़ में एक बहुत बड़े आलिम अरबी भाषा के बहुत बड़े साहित्यकार व कवि, धार्मिक विचार रखने वाले अल्लामा मिर्ज़ा मुहम्मद अली औरदाबादी थे और वह तनिक भी जातीय या राश्ट्रीय द्वेश (तास्सुब) के बिना शुद्ध ज्ञान व धार्मिक मूल्यों के बहुत बड़े समर्थक थे उन्हें ना जाने कैसे मेरे बारे में पता चल गया और वह पूछते हुए उन्हीं शुरूआती दिनों में मदरसे के एक कमरे में मेरे पास पहुँचे और एकदम उन्हें मुझसे मुहब्बत पैदा हुई जो बढ़ती ही गई और बाद में हमारे इस साथ में "एक जान दो तन" में अल्लामा सय्यद मुहम्मद सादिक़ बहरूल उलूम भी साथ हो गए।

तो हम ऐसे त्रिलोक हो गए कि जब तक में नजफ में रहा हमारी दोस्ती एक मिसाल बन गई बाद में जब हम लोग अलग–अलग जगह हो गए तब भी दिल हमारे मिले रहे।

पहली मुलाक़ात के बाद प्रतिदिन अल्लामा औरदाबादी आने लगे और जितना–जितना यह काम होता गया वह इससे अवगत होते रहे और उन्होंने नजफ़े अशरफ़ विद्वानों के सर्किल में उसकी चर्चा शुरू कर दिया। इस प्रकार लिखने से पहले ही एक अर्थ में नजफ़े अशरफ़ में इसका प्रकाशन शुरू हो गया। और अब जो हम शबे क़द्र के मौक़े पर करबला की ज़ियारत के लिए गए तो यह किताब साफ़ (Fair) की हुई सूरत में मेरे पास थी।

मुफ़्ती साहब मुझ पर बहुत कृपा करते थे इसलिए मैं इस बार भी उनके पास ही ताज महल में जाकर ठहरा उनके पास पुराने सम्बंधों की वजह से करबला–ए–मोअल्ला के बड़े–बड़े विद्वान उलमा आते थे। अब मैं हर बैठक में उपस्थित रहता था और जनाब मुफ़्ती साहब मेरे परिचय में इस किताब की बात करते थे।

वहाबियों के अत्याचार और उनके विचारों का चर्चा हर जगह था इसलिए बहुत से लोग रद्दे वहाबिया (वहाबी मत की काट) के विषय पर किताबें लिख रहे थे और मेरी आयु को देख कर इस किताब के बारे में सुनकर वह अचम्भे में पड़ कर उसे देखने की चाहत रखते थे। अब मैं हर एक को तो यह किताब देखने के लिए कहाँ देता, पढ़कर सुनाने लगता था जिससे उन्हें पूरी किताब के सुनने का शौक़ होता था इसी तरह मग़रिब की नमाज़ के बाद बहुत रात तक मेरा काम किताब पढ़ने का हो गया और प्रतिदिन उन सब के साथ कुछ नये लोग जिन तक यह बात पहुँचती चाहत लेकर आते थे। वहाँ के हिसाब से मैं एक प्रारम्भिक चरण का छात्र था और यह हज़रात वहाँ के छात्र नहीं बल्कि उलमा की हैसियत रखते

थे मगर यह उनके मन की उदारता थी कि हर एक ने इस विषय पर इसको दुर्लभ समझा। यहाँ तक कि आक़ा शैख़ मुहम्मद अली कुम्मी जो उस समय करबला के बड़े उलमा में से थे साठ वर्ष से अधिक आयु के थे और किफ़ाया पर उनका फुटनोट दो भागों में नजफ़–ए–अशरफ़ में प्रकाशित हुआ बाद में जब मैं इराक़ ही में था वह ईरान चले आए तो आयतुल्लाह अल उज़मा हाज शैख़ अब्दुल करीम यज़दी हाएरी के बाद कुम्म में उनका ही नाम था और वह भी रद्दे वहाबिया पर एक शोध पुस्तिका तैयार कर रहे थे तो इस किताब की चर्चा सुनकर वह भी आए और चाहा कि दो तीन दिन के लिए इसे साथ ले जाएं मैंने उनकी महानता और तेज को देखते हुए इस किताब का उन्हें देना ठीक समझा। वह उसे अपने साथ ले गए और तीन दिन बाद वापस कर दिया। अतः इसके बाद उनकी किताब इस विषय पर प्रकाशित हुई और दूसरी किताब अल्लामा शैख़ मुहम्मद की और तीसरी किताब हुज्जतुल इस्लाम आक़ा सय्यद हसन क़ज़वीनी की प्रकाशित हुई।

हमारे पूर्वज हज़रत गुफ़रामआब (ताबा सराह) के उस्ताद की संतान में आक़ा सय्यद मुहम्मद तबातबाई एक बड़े धार्मिक पुरूष थे जो सरकार आक़ा मिर्ज़ा मुहम्मद तक़ी शीराज़ी और आक़ा–ए–शरीअत आदि के साथ पहले विश्व युद्ध के बाद अंग्रेज़ों से इराक़ को आज़ाद रखने के जिहाद में साथ रह चुके थे, उन्हें मेरी किताब से बहुत लगाव हो गया और मैं कुछ दिन बाद नजफ़े अशरफ़ वापस हुआ तो अल्लामा औरदाबादी ने अपने मित्रों में नजफ़ के अन्दर और आक़ा सय्यद मुहम्मद अली तबातबाई ने करबला –ए – मुअल्ला में यह बात चलाई और बढ़ाई कि इस किताब को प्रकाशित किया जाए इसलिए हैदरिया प्रकाशन नजफ़–ए–अशरफ़ से यह किताब प्रकाशित हुई।

उस समय में मेरी सोच अधिक मुरव्वत वाली न थी इसलिए इस किताब का नाम रखा था "सौतुल अज़ाब अला इत्तेबाए इब्ने अब्दुल वहाब" (अब्दुल वहाब के बेटे के पीछे चलने पर अज़ाब/प्रकोप का कोड़ा) जो मुझे बहुत अच्छा लगता था मगर प्रकाशन के समय उन हज़रात ने कहा कि यह नाम बहुत कठोर है और बदलवा कर "कशफ़ुन्नक़ाब अन अक़ाएदि इब्ने अब्दुल वहाब" (इब्ने अब्दुल वहाब के अक़ीदों/विश्वासों का अनावरण) नाम रखने पर मजबूर किया। जिसका उस समय बहुत दुःख हुआ। फिर इस किताब की समाप्ति पर एक समीक्षा थी वह उन लोगें ने निकलवा दिया कि उसकी भाषा शैली बहुत कठोर है। इस देश की हवा इसके अनुरूप नहीं है। मजबूरी में वह भी निकाल दिया और केवल कुछ लाईनों को बढ़ाकर समाप्त किया जिसका बहुत दुःख हुआ।

इसके बाद धीरे–धीरे मेरी सोच भी ख़ुद सद्भाव की हो गयी जिसकी सज़ा भारत में बहुत भुगतना पड़ी। इस किताब के आरम्भ के पन्ने पर मेरे शुरू के उस्ताद इस समय के मरज़–ए–तक़लीद (सबसे बड़े धर्मगुरू) आयतुल्लाह अलहाज सय्यद अबुल क़ासिम खुई साहब (जो उस समय प्राथमिक चरण के गुरू थे), ने किताब का परिचय लिखा। फिर छपने के बाद किताब दूर करीब हर जगह फैल गई तो भारत के एक बड़े

आलिम मौलाना सय्यद ज़हूर हुसैन साहब ने एक अरबी तक़रीज़ (अवलोकन) लिख कर भेजी और अहले सुन्नत के बड़े आलिम और शैख़ अल तरीक़त (सूफ़ी गुरू) मौलाना शाह मुहम्मद सुलेमान फुलवारवी ने गद्य व कविता में लिख कर भेजी और ज़बानी ऐसे शब्द कहे जो मेरे वालिद मुम्ताजुल उलमा ताबा सराह ने अपने इजाज़े में जो मेरे लिए कुछ वर्ष बाद लिखा था, मे लिखे।

शाम (सीरिया) के एक बहुत बड़े आलिम जनाब सय्यद मोहसिन अमीन आमली (ताबा सराह) ने जो प्रसिद्ध बड़ी किताब "अयानुशिशया" (शियों के उत्कृष्ट लोग) के लेखक थे दो वर्ष बाद एक बड़ी किताब इस विषय पर "कशफुल इरतिजाब" लिखी तो मेरी इस किताब के दो पन्ने इस तरह लिए जिसमें एक अजीब भूलचूक ने जन्म लिया और वह यह कि मैंने "तारीख़े नज्द" (नज्द इतिहास) ईब्ने आलूसी से वहाबी आन्दोलन के प्रारम्भिक विकास के हालात लिखे हैं तो फुटनोट पर लिख दिया है कि यह लिखावट तारीख़े नज्द में किसी स्थान पर नहीं है। उन्होंने इस फुटनोट और इसके अर्थ पर ध्यान नहीं दिया और इस आलेख को तारीख़े नज्द इब्नेआलूसी के हवाले से लिख दिया जबकि वह इबारत मेरी है इब्नेआलूसी की नहीं है। अब अगर कोई खोजे भी तो उसे वह तारीख़े नज्द के किसी भी स्थान पर नहीं मिल सकती। जब यह किताब मैंने देखी तो मैंने एक पत्र के द्वारा उन्हें इस बात से अवगत कराया। यद्यपि दूसरे प्रकाशन में वह इसे ठीक कर देते मगर जहाँ तक मुझे पता है उसका दुबारा प्रकाशन नहीं हुआ।

मेरी किताब "कशफुन्नक़ाब" अल्लामा औरदाबादी के द्वारा ही छपी थी इसलिए इसके प्रकाशन के बाद से उनके घर से ही बिकती थी जो उलमा ईरान आदि से आते थे उन्हें वे उपहार स्वरूप देते थे। भारत में केवल कुछ प्रतियाँ ही आयीं थीं जो मैंने उलमा को उपहार स्वरूप भेजी थी मेरे पास सिर्फ एक प्रति थी जो लखनऊ में हुए दंगे में जो कुछ वर्ष पहले चेहलुम (बीस सफ़र) के दिन हुआ था मेरे घर और पुस्तकालय के साथ जलकर खत्म हो गई।

अब जब सम्मानित मित्र जनाब जाफ़र अली असील साहब बम्बई ने जो उसके दोबारा प्रकाशन का विचार प्रकट किया और उर्दू में भी इसके प्रकाशन के लिए कहा तो मेरे लिए इसका ढूढ़ना सम्भव ना था मगर उन्होंने खुद बम्बई (मुम्बई) में तलाश करके एक प्रति और उसकी फोटोस्टेट मेरे पास भेजी। अतः इसके बाद अब मुझ पर जिम्मेदारी आ गई थी अब अगर मैं आना कानी करता तो इस पवित्र कार्य को करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। अतः व्यस्तता और दूसरी रुकावटों के होते हुए भी मैं इस कार्य के लिए कलम लेकर तैयार हुआ और अब इतने समय में भारत में रहकर इस विषय पर जो कुछ भी जमा किया था उसमें जो कुछ अरबी के लिए ठीक था उसको अरबी किताब में बढ़ा दिया और जो केवल भारत ही के लिए ठीक था उसे इस उर्दू किताब में मिला रहा हूँ क्योंकि उन लोगों से जिनकी किताबों से काम लिया गया है उन्हें भारत के ही मुसलमान जानते हैं इसलिए भी उनको अरबी में नहीं मिलाया गया। इस तरह मेरा अनुमान यह है कि उर्दू किताब अरबी किताब से कुछ बड़ी होगी इसलिए

इसे पूरी तरह अरबी किताब "कशफुन्नकाब" का अनुवाद नहीं कहा जा सकता बल्कि इसके पूरे अनुवाद के समावेश ही उर्दू में इसे एक पूर्ण किताब का स्थान मिला है।

वस्सलाम।

अली नक़ी नक़वी

10 ज़िकादा 1404 हिजरी अलीगढ़

अरबी मूल पुस्तक कशफुन्नक़ाब की प्रस्तावना का सार

बिसमिल्लाहिर रहमानिर रहीम

परम् सृजनहार की सराहना संस्तुति और मुहम्मद और उनकी सन्तान पर

यह किताब "कशफुन्नक़ाब अन अकाइदि इब्ने अब्दिल वहाब" अली नक़ी नक़वी द्वारा लिखी गई है उस समय जब अल्लाह की इच्छा और मदद से नजफ़ ए अशरफ़ की पवित्र धरती पर पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और बस वहाँ पहुँचने के बाद जो वर्षों से मेरे दिल में इच्छा थी कि एक किताब ऐसी लिखी जाए जिसमें वहाबी गिरोह के विचारों व विश्वासों का कुछ विस्तार से वर्णन किया जाए क्योंकि बहुत से लोग इस गिरोह के विचारों से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। अतः बहुत कम दिनों में यह पूरी हो गई। और इस किताब को मैंने एक मुकद्दमें, और कुछ अध्यायों में विभाजित किया है।

मुक़द्दमाः इब्ने अब्दुल वहाब के जीवन का इतिहास।

पहला अध्यायः उनके विचार अल्लाह के बारे में

दूसरा अध्यायः उनके विचार हज़रत पैगम्बरे खुदा[स] के बारे में।

तीसरा अध्यायः उनके विश्वास औलिया और महापुरूषों के बारे में।

चौथा अध्यायः उनके विश्वास सम्पूर्ण मुसलमानों के बारे में।

पाँचवा अध्यायः उनके विश्वास नबियों और महापुरूषों के मज़ारों के बारे में।

छठा अध्यायः उन हदीसों के बारे में जो रसूल अल्लाह[स] से नज्द वालों के लिए मिलती हैं।

सातवाँ अध्यायः वहाबी जत्थे के कार्य उनके आरम्भ से अब तक।

नोटः इस उर्दू किताब में उक्त शीर्षकों के अलावा दो अन्य शीर्षकों को और बढ़ाया गया है जो इसके प्रारम्भ में है।

(1) मुस्लमानों में और ख़ासकर शियों में वहाबी शब्द का अर्थ।

(2) भारत में वहाबियत को बढ़ावा और उसके अनेक चेहरे।

मुसलमानों में आम और शियों में ख़ास कर हमारे यहाँ पारिभाषिक शब्द

वास्तविक "वहाबी" तो इब्ने अब्दुल वहाब का मानने वाला वही सत्तारुढ़ वर्ग है जो नज्द का निवासी है और इसलिए उनकी राजधानी अब भी नज्द के इलाक़े में रियाद़ है। यह फ़िक़्ह (धर्म विधि शास्त्र) के हिसाब से हम्बली है अर्थात इमाम अहमद बिन हमबल की फ़िक़्ह को मानने वाले हैं और विचारों व आस्थाओं में उनके गुरू इब्ने तैयमिया और उनके चेले इब्ने क़य्यिम और इब्ने अब्दुलवहाब आदि हैं।

इन्ही इब्ने तैयमिया के विचारों को मुहम्मद इब्ने अब्दुल वहाब ने अपना कर बारहवीं शताब्दी हिजरी की समाप्ति और तेहरवी

शताब्दी के आरम्भ में नज्द के क्षेत्र के एक भाग के उस समय के सऊदी कुटुम्ब के प्रमुख मुहम्मद बिन सऊद की सहायता से फैलाया जिसका इतिहास इस किताब के अरबी अनुवाद में बयान किया जाएगा। इसलिए यद्यपि उनके पिता अब्दुल वहाब इस मामले में उनके साथ नहीं थे बल्कि अंत में उनका विरोध साफ दिखने लगा था मगर वह मत बेटे के नाम पर नहीं बल्कि बेचारे बाप के नाम पर जो उसके खिलाफ़ थे जुड़ गया और "वहाबी" कहलाया।

फिर चूंकि वहाबियों की शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग दरगाहों और रौज़ों पर जाने और दर्शन करने का विरोध है और औलिया व मुक़र्रबीने बारगाहे इलाही (ख़ुदा के यहाँ के क़रीब/निकट) और मुहम्मद[स] व आले मुहम्मद से तवस्सुल (मध्यस्थता चाहना) को शिर्क (ख़ुदा का सहभागी, साझी) मानना और नज़र व नियाज़ आदि को मना करना है इसलिए भारत व पाकिस्तान में यह विचार आम हो गया है कि बरेलवी लोग जो इन बातों को मानते हैं वह अपने को "सुन्नी" कहते हैं और देवबन्दी लोगों को जो अधिकतर इनको नहीं मानते हैं "वहाबी" कहते हैं इसलिए कुछ बरेलवी वक्ता व लेखक जब देवबन्दियों की बात करते हैं तो कुछ इस तरह कहते हैं मौलवी नम्बर 24 ने यूँ कहा। क्योंकि "वहाबी" के अंक (शब्दांश पद्धति में) चौबीस है।

भारत के शियों का यह मुहावरा हो गया है कि वह अहले सुन्नत के उस गिरोह को जो उन सब बातों का मानने वाला है और अधिकतर शियों के साथ भाईचारे का बरताव करता है या अज़ादारी आदि में शामिल होता हैं "हनफ़ी" कहते हैं और उन बातों के झुठलाने वाले और ईमामे हुसैन[अ] की अज़ादारी के खिलाफ लोगों को "वहाबी" कहते हैं जबकि देवबन्दी लोग फ़िक़्ह के हिसाब से हनफी हैं, वहाबियों के गिरोह में नहीं अर्थात् हम्बली नहीं हैं और शियों के विचार में "वहाबी" सुन्नियों की जो सब से बड़ी मिसाल हो सकती है जैसे मौलवी अब्दुश्शकूर साहब अपने समय के "अल नज्म" के प्रकाशक वह भी हनफ़ी थे वहाबियों की तरह हम्बली नहीं थे।

हमारी इस उर्दू किताब का नाम जो "रद्दे वहाबिया" है इसमें हमारा ध्येय उसी खास गिरोह की काट है जो इब्ने अब्दुल वहाब का मानने वाला है मगर जब तवस्सुल आदि के विषय पर बहस की जाएगी तो जो उन लोगों के उन विचारों में उनके साथ हो सब की काट हो जाएगी। चाहे वह किसी भी अर्थ में "वहाबी" हों या नहीं।

भारत में वहाबियत का आरम्भ और उसका विकास

जहाँ तक हमें पता है कि भारत में वहाबी विचारों का आगमन जनाब शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी के द्वारा हुआ। वह चाहे स्वयं पूर्ण रूप से इन विश्वासों के अगुवा न हों जिसका पता इससे चलता है कि वह स्वयं सूफ़ी मत को मानते हैं बल्कि उनकी स्वयं बड़े सूफ़ियों में गिनती होती है और उनके पुत्र जनाब शाह अब्दुल अज़ीज़ देहलवी तोहफा–ए–इसना अशरिया के लेखक इस बारे में प्रसिद्ध नहीं हुए मगर उनके बाद शाह इस्माईल जिनके नाम के साथ अधिकतर "शहीद" का शब्द प्रयोग होता है, इस गिरोह के बड़े अगुवा बन गए

और इस गिरोह के नेता सय्यद अहमद हुए उनके नाम के साथ भी अधिकतर शहीद शब्द ही प्रयोग होता है।

देवबन्द के उलमा जैसा कि पहले आ चुका हनफ़ी है और शायद सूफ़ी मत को भी मानते हैं और इसके सिलसिले (क्रमों) से जुड़े हुए हैं। मगर उनके धर्म गुरू मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानौतवी के यहाँ इस प्रकार के विचार इतनी कट्टरता के साथ पाए जाते हैं कि उनके शब्दों से हज़रत रिसालत मआब[स] (मुहम्मद[स०]) की शान में गुस्ताखी (अपमान) के पहलू जन्म लेते हैं। अतः यह लोग बिल्कुल वहाबी हो या नहीं मगर इनसे वहाबियत को शक्ति ज़रूर मिलती है।

दूसरे लोगों में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद आगे—आगे हैं जो वास्तव में वहाबी गिरोह के मानने वाले नहीं थे और न ही भेदभाव का शिकार थे, यहाँ तक कि एक महत्वपूर्ण विचार "तबर्रा" की हिमायत में "तवल्ला व तबर्रा" ही के नाम से वह एक ऐसे निबंध के लेखक हैं जिसे ईमामिया मिशन लखनऊ ने किताब "ख़िलाफ़त व इमामत" के किसी भाग का हिस्सा बनाकर प्रकाशित किया। इस निबन्ध में कुछ शब्द तो इतने महत्वपूर्ण और दिल को लगने वाले हैं कि कंठस्थ कर लिए जाएं वह यह हैं "अगर हम यह उसूल बना लें कि बुरों को भी अच्छा कहेंगे तो जो वास्तव में अच्छे हैं उनके लिए हमारे पास क्या रह जायेगा?" मगर वह शैख़ इब्ने तैयमिया के ऐसे प्रशंसक हैं कि जैसे वह उनके ज्ञान से बहुत प्रभावित हों। उनके बाद से तो सुन्नी लेखकों की यह आदत ही बन गई है कि वह इब्ने तैयमिया की प्रशंसा जरूर करते हैं। जबकि यह केवल देखा देखी ही है अर्थात् उन्होंने कभी इब्ने तैयमिया की रचनाओं की सूरत भी नहीं देखी है। अतः इन बातों से भी वहाबी विचारों को अप्रत्यक्ष रूप से शक्ति मिलती है और अब सऊदी सरकार दुनिया के दबाव की वजह से बहुत हद तक "तक़य्ये" (अपने मत को खुल कर न बताना) में है और यह तक़य्या आरम्भ ही से "नबी[स] के गुम्बद" के लिए होता रहा क्योंकि वह उनके विचारों में (माज़ अल्लाह) सबसे बड़ी मूर्ति होने की वजह से सबसे पहले तोड़े जाने के लायक़ था। इसके अलावा वो दुनिया के मुसलमानों और यहाँ तक कि हम शियों को हज से नहीं रोकते बल्कि बहुत कुछ सुविधाऐं उपलब्ध कराते हैं जबकि उनके धार्मिक विचारों से इन सब का मुशरिक होने के कारण 'मस्जिदे हराम' के समीप जाना भी ठीक नहीं है मगर इन बातों में देखने में कट्टरता के कम होते हुए भी अब उनका धन जो तेल द्वारा मिल रहा है मुस्लिम देशों में वहाबियत के प्रचार—प्रसार में बहुतायत के साथ खर्च हो रहा है जिससे शियों को केवल मानसिक पीड़ा हो सकती है मगर उसका प्रभाव विश्वास के लेहाज़ से अहले सुन्नत की अधिक संख्या पर पड़ना आवश्यक है।

इब्ने अब्दुल वहाब के जीवन का इतिहास और पलने बढ़ने की बात*

इब्ने अब्दुल वहाब का नाम मुहम्मद सुपुत्र अब्दुल वहाब बिन सुलेमान तमीमी है। उनका पालन पोषण नज़्द इलाके के ऐनिया नामक नगर में हुआ। उन्होंने हम्बली फ़िक़्ह

अपने पिता से पढ़ी और बचपन से ही वह आम इस्लामी रूझानों के ख़िलाफ़ बातें कहने लगे। और बहुत सी बातों पर जो मुसलमानों में फैली हुई हैं उन्हें बुरा कहने लगे मगर वर्षों तक उन्हें कोई बात मानने वाला नहीं मिला। इसके पश्चात् उन्होंने मक्का मुअज़्ज़मा की यात्रा की और फिर मदीना मुनव्वरा गए और शैख़ अब्दुल्लाह बिन इब्राहीम बिन सैफ़ से शिक्षा प्राप्त करने लगे और वहाँ पर उन्होंने रसूल[स] के रौज़े पर दुआ करने पर बहुत बिगड़े और वहाँ से शाम जाने के विचार से बसरा गए और वहाँ शैख़ मुहम्मद मजमुई से शिक्षा ली और अब बसराह के मुसलमानों की बातों पर अंगुली उठाने लगे तो वहाँ के निवासी उनसे आग बगूला हो गए। यहाँ तक कि उन्हें वहाँ से भागना पड़ा। अंत में वह नज्द के एक नगर "हुरैमला" में पहुँचे जहाँ उनके पिता रहते थे और वर्षो तक वह उनसे शिक्षा प्राप्त करते रहे मगर यहाँ उन्होंने नज्द वासियों की बहुत सी बातों पर "शिर्क शिर्क" का शोर मचाया और उनके पिता ने उनको इस बात से मना किया तो वह उनकी बात भी मानने को तैयार न हुए बल्कि उनसे लड़ाई के लिए तैयार हो गए और कुछ लोग उनके गिरोह में सम्मिलित हो गए जिससे उनमें और हरैमला के निवासियों में युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। जब उनके पिता शैख़ अब्दुल वहाब की 1153 हिजरी में मृत्यु हो गई तो उन्होंने और अधिक वेग के साथ अपने विचारों का प्रचार शुरू कर दिया जिससे बाद में हरैमला के लोग उनकी हत्या के लिए तैयार हो गए तो वह वहाँ से ऐयनिया की ओर चले गए। उस समय वहाँ उस्मान बिन मुहम्मद बिन मुअम्मर का राज था जिसे उन्होंने ऐसे सपने दिखाए कि अगर वह उनका साथ दे तो पूरे नज्द का राजा हो जाएगा। उसने उनकी मदद का बीड़ा उठाया और अब इस माद्दी शक्ति का सहारा लेकर उन्होंने बहुत वेग से अपने विचारों का प्रचार–प्रसार शुरू कर दिया और जब ऐनिया के बहुत से निवासी उनके साथ हो गए तो उन्होंने ज़ैद बिन खत्ताब के मज़ार का गुम्बद जो उस इलाके में था तुड़वा दिया मगर जब यह समाचार अहसा और कुतौफ़ के हाकिम सुलेमान बिन मुहम्मद बिन अज़ीज हमीदी को पहुँचा तो उन्होंने बहुत गुस्से से भरा हुआ पत्र ऐनिया के राजा उस्मान के पास भेजा कि उस आदमी की हत्या करा दो। उस्मान को इब्ने अब्दुल वहाब से बहुत मुहब्बत थी मगर अहसा और क़तीफ के शासक के विरोध की शक्ति भी न थी। इसलिए उसने गुपचुप तरीके से इब्ने अब्दुल वहाब के पास समाचार भिजवाया कि आप इसी समय यहाँ से चले जायें। उन्होंने उसे बहुत समझाया और पूरे नज्द का राजा बनने की आशा जगाई मगर वह उनके कहने में नहीं आया और कठोरता के साथ उसी समय चले जाने के लिए कहा। अतः विवश होकर 1160 हिजरी में वह वहाँ से निकलकर दरईया पहुँचे। यह धरती सदैव से ही शैतानी कार्यो का केन्द्र रही है। यह वही यमामा की धरती है जहाँ से मुसैलिमा–ए–कज़्ज़ाब उठा था और उसने नबुवत का दावा किया था। यहाँ का राजा उस समय आधुनिक सऊदी साम्राज्य का पूर्वज कबीलाए गुनैरा में से मुहम्मद बिन सऊद था।

शेष पेज नं0 06 पर

और बहुत कुछ बलिदान करना पड़ता है। ईश्वरीय सान्निध्य के लिए भी एक विशेष आचरण और जीवन पद्धति है। परन्तु हज़रत इब्राहीम[अ0] ने एक ऐसा आचरण विशेष और पथ, ऐसी शैली और चलन का निरूपण किया था जो स्वतः अल्लाह ने उन्हीं से विशेष रखना आवश्यक समझा और उसे इब्राहीम[अ0] के साथ विशिष्ट रूप से सम्बद्ध करते हुए अपने मित्र अन्तिम पैग़म्बर[स0] से उसके अनुपालन की इच्छा व्यक्त की।

13. हज़रत इब्राहीम[अ0] का "हनीफ़िया पंथ" बलिदान का वह महिमामयी पंथ है, जो एक गहरा दर्शन भी है एक ऊंचा चिन्तन भी, एक मूल्यवान अनुभव भी है और एक विशाल मनमोहक हृदयंगम होने वाली परम्परा भी।

14. अल्लाह – एक मात्र उपास्य, से समीपता का वह दर्शन जिसमें दुई की पहुंच ही नहीं, बस उपास्य की एक विशुद्ध कल्पना है और सान्निध्य हेतु बलिदान एवं न्योछावर होने का एक अथाह भाव है, ऐसी मूल्यवान और रिन्तर किया है जिसे इतिहास मेट न सके। अल्लाह के ख़लील इब्राहीम[अ0] की बलिदान–भावना और इस्माईल[अ0] की न्योछावर–भावना से लेकर अल्लाह के प्रिय अन्तिम पैग़म्बर[स0] के पु0 "इब्राहीम" के निधन की घटना और हुसैन[अ0] बिन अली[अ0] बिन अबी तालिब[अ0] की महान शहादत– "ज़िब्हें अज़ीम, महान बलिदान" तक।

15. बलिदान के इसी महिमामयी दर्शन, अनुभव और परम्परा की निरन्तरता को कुर्आन महान ने इन दो आयतों में प्रस्तुत किया है।

सूरा नहल आयत 123

"हे रसूल[अ0]! फिर तुम्हारे पास वहि भेजी कि तुम इब्राहीम के ढंग का अनुसरण करो।"

सूरा साफ़्फ़ाति आयत 107

"और हमने इस्माईल[अ0] का मुक्त प्रतिदान एक ज़ब्ह–ए–अज़ीम (महान कुर्बानी) नियत किया।"

ज़ेरे खंजर नमाज़ और दुआ।
"काबा क़ौसैन" फ़ासिला न रहा।।
तिश्नगी, जंग, सब्र सज्दः–ए–शुक्र।
बस हमें आ गया यक़ीने ख़ुदा।।



पेज नं. 14 का शेष

इब्ने अब्दुल वहाब ने किसी तरह से उसकी पत्नी से सम्पर्क स्थापित किया और उसे पूरे नज्द पर राज्य करने का सपना दिखाया। यह मुहम्मद बिन सऊद उनकी बातों में आ गया और तन मन धन से उनका साथ देने पर तैयार हो गया और मुसलमानों को मुशरिक कहकर जिहाद के नाम पर उनकी जान, माल और इज़्ज़त के लूटने के लिए इब्ने अब्दुल वहाब के हाथ पर बैयत कर ली।

मुहम्मद बिन सऊद से समझौते के बाद मुहम्मद बिन अब्दुल वहाब नगर में आए और इब्ने सऊद ने एक बहुत बड़ी सेना तैयार कर के आस पड़ोस के मज़ारों को तोड़ने और जो मुसलमान रुकावट बने उनका खून बहाने के लिए भेज दिया। उन्होंने हर तरह इस कार्य को करने में राजा की बात मानी और हत्या, खून और लूटमार का बाज़ार गर्म हो गया। जब यहां पूरी सफलता हो गयी तो पास पड़ोस राजाओं के पास वहाबी विचारों को मानने के लिये पत्र लिखे कुछ नेतों धौंस में आकर बात मानली और जिन्होने ने नही मानी उनसे युद्ध के लिये दरइया के निवासियों को तैनात किया गया अतः नज्द के आस– पास और उससे आगे बढ़कर बहुत सख्त लड़ाई हुई।

जारी